इकाई 17 पद्माकर की कविता

इकाई की रुपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 पृष्ठभूमि
17.3 शृंगार वर्णन
  17.3.1 संयोग वर्णन
  17.3.2 वियोग वर्णन
17.4 प्राकृतिक वर्णन
17.5 लोक जीवन का चित्रण
17.6 काव्य शिल्प
17.7 काव्य भाषा
17.8 सारांश
17.9 अभ्यास/प्रश्न

17.0 उद्देश्य

पिछली इकाइयों में आपने बिहारी और घनानंद का अध्ययन किया था। इस इकाई में हम रीतिकाल के एक प्रमुख कवि पद्माकर का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़कर आप :

- पद्माकर की कविता में वर्णित शृंगार की विशेषताओं को जान सकेंगे
- पद्माकर की कविता में प्रकृति वर्णन और लोक जीवन के चित्रण की विशेषताएँ जान सकेंगे; और
- पद्माकर की शिल्पगत और भाषागत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

पद्माकर रीतिकाल के अंतिम खेवे के कवियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। उनकी प्रसिद्धि एक कवि और आचार्य दोनों रूपों में है। उन्होंने तीन प्रकार के काव्य-ग्रंथों की रचना की है - प्रशस्ति काव्य, रीतिकाव्य और भक्तिकाव्य। प्रशस्ति काव्य दो हैं - **'हिम्मतबहादुर विरुदावली'** और **'प्रतापसिंह विरूदावली'**। रीतिकाव्य के अंतर्गत भी दो पुस्तकें प्रधान हैं - **'पद्माभरण'**, जो महाराज जसवंत सिंह के **'भाषा भूषण'** की शैली में लिखी अलंकार की पुस्तक है और **'जगद्विनोद'**, जो शृंगार रस और उसके एक प्रमुख अंग नायिका भेद का निरूपक ग्रंथ है। पद्माकर के नाम पर एक तीसरा रीतिग्रंथ भी मिलता है- **अलीजाह प्रकाश**। लेकिन यह कोई स्वतंत्र कृति नहीं, प्रत्युत **जगद्विनोद** का ही अंशत: परिवर्तित रूप है, जिसकी रचना ग्वालियर के दौलत राव सिंधिया के नाम पर हुई है। एक ही पुस्तक को थोड़े हेर-फेर के साथ एकाधिक राजाओं की सेवा में उपस्थित करना उस युग के आश्रययोगी कवियों के लिए कोई नई बात नहीं थी। पद्माकर के भक्ति-वैराग्यपरक ग्रंथों में **ईश्वर पचीसी, प्रबोध पचासा, गंगा लहरी, राम रसायन** आदि के नाम लिए जाते हैं। सारत: पद्माकर ने अपने काव्यकाल के आरंभ में वीररसात्मक रचनाएँ की, मध्याह्न मे शृंगार का चषक भरा और पर्यवसान भक्ति में पाया।

किंतु पद्माकर की प्रसिद्धि का मूलाधार उनकी शृंगारिक रचनाएँ हैं। वे शृंगार रस के सिद्धवाक् कवि थे। वे जिस वातावरण में काव्य-सर्जना कर रहे थे, वह भी शृंगार के सर्वथा अनुकूल था। उस युग में जीवन का सात्विक उत्साह लुप्त हो गया था। औरंगजेब के प्रचंड शासन से दुबककर उत्तर भारत के राजा-महाराज सिर उठाने का साहस नहीं करते थे। उनके लिए शाही कर चुकाकर महलों के भीतर आराम करना ही सब कुछ था। राज-दरबारों में जीवन के बहुमुखी विस्तार से उदासीन हो शृंगार और विलासिता की सँकरी गलियों में अपने को भुलाये रखने की कोशिश की जा रही थी। दरबारी कवि राजाओं-महाराजाओं की प्रशंसा के साथ-साथ उनकी शृंगार-पिपासा को शांत करने के लिए नवोढ़ाओं की भाव-भंगिमा का चित्रण करने में ही लगे रहते थे। लोभ के चश्मे के भीतर से वे सबको शहंशाह मानते थे और केवल शृंगार-चषक पिलाकर उनके ऊपर दोहरा नशा चढ़ाया करते थे। रीतिकाल की गर्हित शृंगारिकता के बीच भूषण ने अवश्य सिंह गर्जन किया, पर औरंगजेब की आँखों के मुँदते ही हिंदूवाद का जलजला ठंडा हो गया। मराठों की शक्ति का उदय दक्षिण में हुआ, पर संघटन के अभाव में उसकी पराजय ने ऐसा पलटा खाया कि सारे भारतवर्ष में फिर सुख निंदिया की जँभुआई आने

लगी। शृंगार के अड्डे जगह-जगह हो गए। छुटभैये जमीदारों तक का शगल नायिका-भेद की बारीकी निकालना एवं समझना हो गया। कवियों की लेखनी उसके निरूपण में लगी। पद्माकर का काव्य-संसार में आविर्भाव ऐसे ही समय में हुआ था।

17.2 पृष्ठभूमि

पद्माकर को अनेक राज दरबारों में आश्रय मिला। कहते हैं, उन्होंने सोलह-सत्रह साल की कम उम्र में ही सागर नरेश रघुनाथ राव को एक कवित्त सुनाया था; जिसपर प्रसन्न होकर रघुनाथ राव ने उन्हें एक लाख मुद्राओं से पुरस्कृत किया। पद्माकर को देव की भाँति ही अनेक राज दरबारों में भटकना पड़ा, यद्यपि उन्हें देव की अपेक्षा अधिक सहृदय और उदार आश्रयदाता मिले। पद्माकर के आश्रयदाताओं में प्रमुख हैं: महाराज जैतपुर, सुगरानिवासी नोने अर्जुन सिंह, दतिया नरेश महाराज पारीक्षत, रजधान के गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर, सताराधिपति रघुनाथ राव (राघोबा), जयपुर-नरेश सवाई प्रताप सिंह और उनके पुत्र महाराज जगत सिंह, उदयपुर के महाराणा भीम सिंह और ग्वालियर-नरेश दौलत राव सिंधिया। पद्माकर को इन राज-दरबारों में पर्याप्त सम्मान के साथ बहुत अधिक धन-सम्पत्ति की भी प्राप्ति हुई। उन्होंने स्वयं महाराजा जगत सिंह के सम्मुख आत्मपरिचय का जो कवित्त पढ़ा था उससे उनके व्यक्तित्व और ऐश्वर्य का पता मिलता है :

भट्ट तिलंगाने को बुंदेलखंडवासी कवि,
सुजस प्रकासी 'पद्माकर' सुनाया हौं।
जोरत कवित्त छंद छप्पय अनेक भाँति,
संसकृत प्राकृत पढ़े जु गुनग्रामा हौं।।
हय रथ पालकी गयंद गृहं ग्राम चारू,
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगत सिंह,
तेरे जान तेरो वह विप्र हौं सुदामा हौं।।

पद्माकर बड़े राजसी ठाठ में रहते थे - यह बात तो इस कवित्त से झलकती ही है। ये जब जयपुर में रहते थे तो बड़े लाव-लश्कर के साथ सफर के लिए निकलते थे। एक बार जयपुर से बाँदा जाते समय उनके लाव-लश्कर को देखकर बूँदी वालों ने समझा कि कोई हमारे राजा पर चढ़ाई करने आ रहा है, तब इन्होंने उनका भ्रम दूर करने के लिए एक कवित्त बनाकर सुनाया -

नाम 'पद्माकर' डराऊ मत कोऊ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महराज के।

बहरहाल पद्माकर को विभिन्न राज-दरबारों में आश्रय मिला। कोई भौतिक कष्ट नहीं था, सारी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थीं। हाँ, चौथेपन में श्वेत कुष्ट अवश्य हो गया था। उनकी सारी कविता उनके जीवन के अनुकूल ही चलती रही। नव-यौवन में उन्होंने वीर रस को अपनाया, युवावस्था में शृंगार रस में डूबे और ढलती अवस्था में भक्ति की कविता की। किंतु साहित्येतिहास उन्हें शृंगारिक कविताओं के कारण ही स्मरण करता है।

पद्माकर का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ **'जगद्विनोद'** शृंगार का संदर्भ-ग्रंथ है, यद्यपि उसमें अन्य रसों के उदाहरण भी अंत में चलते ढंग से दे दिए गए हैं। कवि ने इसके आरंभ में ही घोषणा की है -

नवरस में शृंगार रस, सिरे कहत सब कोइ।
सुरस नायिका-नायकहि, आलंबित ह्वै होइ।।

इस प्रकार इसमें पद्माकर शृंगार रस और उसके प्रमुख अंग नायक-नायिक भेद का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं।

पद्माकर जयपुर के महाराजा जगत सिंह के दरबार में बहुत दिनों तक रहे और उन्हीं के नाम पर अपना प्रसिद्ध ग्रंथ **'जगद्विनोद'** रचा। उन्होंने इसमें हिंदी की चली आती हुई रीति परम्परा का पूर्ण अनुगमन किया है। संस्कृत में कार्य भेद से नायिकाओं के आठ रूप माने गए हैं, पर हिंदी में बहुत

पहले से अष्टनायिका के स्थान पर दशनायिका का निरूपण होता आया है। यद्यपि इस आठ और दस में कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं है। सात भेद तो वे ही हैं, केवल प्रोषितभर्तृका के ही तीन-चार भेद और कर डाले गए हैं। वस्तुत: नायक के प्रवास-प्रसंग को लेकर इन भेदों की कल्पना कर ली गई है - प्रोषितपतिका, प्रवत्सत्पतिका और आगतपतिका। इनमें से प्रवत्सत्पतिका को परंपरा में न देखकर अलग कर दिया है। बहरहाल पद्माकर ने नायिका-भेद के उदाहरण अधिकांश मौलिक रखे हैं। हाँ, **साहित्य-दर्पण** या प्राचीन संस्कृत-काव्यग्रंथों के चार-पाँच उदाहरण इन्होंने अनुवाद करके भी रखे हैं। पद्माकर ने उदाहरण बहुत साफ दिए हैं, इनके लक्षण भी बहुत साफ हैं। मतिराम का **रसराज** भी इसी शैली क और ऐसा ही साफ ग्रंथ है। खैर, पद्माकर के नायिका-भेद के संदर्भ में अद्भुत अभिव्यंजना शैली का दशन होता है। निम्नांकित छंद में नायिका कह तो रही है अपनी सखी से, पर सुना रही है अपने प्रियतम को ही। उसका क्रोध व्यंग्य है-

पीतम के संग ही उमगि उड़ि जैबे का।
न एता अंग-अंगनि परंद-पखियाँ दई।
कहै 'पद्माकर' जे आरती उतारैं, चौंर
ढारैं, श्रम हारैं, पै न ऐसी सखियाँ दई।।
देखि दृग ह्वै ही सों न नेकु हु अघैये,
इन ऐसे झुकाझुक में झपाक झखियाँ दई।
कीजै कहा राम स्याम-आनन बिलोकिबे कों,
बिरचि बिरंचि न अनंत अखियाँ दई।।

17.3 शृंगार वर्णन

रीतिकाव्य के पूर्व शृंगार की प्रमुखता प्राकृत-अपभ्रंश काव्य में मिलती है। प्राकृत-काव्यों में कविगण राज-दरबारों की सीमाओं को तोड़कर जन-समाज के भीतर तो घुसे, पर केवल शृंगार के ही फेर में रहने के कारण उसका स्वरूप बिगड़ने लगा। हाल-रचित प्राकृत रचना **गाथासप्तशती** में विपरीत रति आदि के वर्णन की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है। रीतिकाव्य पर इस शृंगारिक काव्य-परंपरा का जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है। इससे प्रभावित होकर केशव व बिहारी ने शृंगार का स्वरूप कहीं-कहीं ऐसा खींच दिया है, जिसे शृंगाराभास कहना चाहिए। कहीं-कहीं तो विरोधाभास भी हो गया है। बिहारी का एक दोहा देखिये -

बिहँसि बुलाई बिलोकि उत, प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुसकि पसीजति पूत को, पिय-चूम्यो मुख चूमि।।

नायिका बालक का मुख इसलिए चूमती है कि प्रियतम ने उसे चूमा है। यहाँ वात्सल्य भाव सर पर पाँव रखकर भाग गया है।

पद्माकर की शृंगार-भावना ऐसी स्थूल नहीं है। बिहारी की तरह शृंगार के गर्हित चित्रण की शर्त पर वात्सल्य प्रेम का तिरस्कार उनके यहाँ नहीं मिलता है। उन्होंने 'रति विपरीत' आदि के चित्र अवश्य किए हैं, पर यहाँ केवल नायिका-भेद के सिलसिले मे काव्य-परंपरा का पालन भर किया गया है। बहरहाल पुरानी लीक को भी अपनी विशेषता से पद्माकर ने कहीं-कहीं बहुत कोमल बना दिया है। जैसे विभ्रम भाव का यह उदाहरण देखिये -

बछरै खरी प्यावै गऊ तिहिं को पद्माकर को मन लावत है।
तिय जानि गिरैया गही बनमाल सु ऐंचे लला इँच्यो छावत है।।
उलटी करि दोहनी मोहनी की अँगुरी थन जानि कै दावत हैं।
दुहिबो औ दुहाइबो दोउन को सखि देखत ही बनि आवत है।।

17.3.1 संयोग वर्णन

शृंगार-वर्णन के संदर्भ में पद्माकर का ध्यान भाव-वर्णन की अपेक्षा वस्तु-वर्णन पर अधिक है। चित्रधर्मिता उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। वे बिहारी के बाद रीतिकाल के सबसे बड़े शब्द चित्रकार हैं। उनके द्वारा खींचे गए चित्रों में बिहारी की भाँति रंगों का इकहरापन नहीं, बल्कि एक

सफल चित्रकार की वर्ण विपुलता और सामंजस्य है। उदाहरण के लिए, नायिका का यह मनमोहक चित्र देखिये -

जाहिरै जागत-सी जमुना जब बूड़ बहै उमहै वह बेनी।
त्यों 'पद्माकर' हरि के हारन गंग-तरंगन को सुख देनी॥
पाँयन के रंग सों रँगि जाति-सी भाँति-ही-भाँति सरस्वती सेनी।
परै जहाँई जहाँ वह बाल तहाँ तहँ ताल में होत त्रिबेनी॥

कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि पद्माकर के हाथ में सचमुच कलम नहीं, तूलिका ही थी, जो भावना के हर मोड़ को चित्रों में बाँधती चलती थी। ऊपर के सवैये में यदि रंगों का कुशल संयोजन है तो प्रस्तुत कवित्त अनुभाव योजना में बेजोड़ है -

आई खेलि होरी घरै नवल किसोरी कहुँ, बोरि गई रंग मों सुगंधन झकोरै है।
कहै 'पदमाकर' इकत चलि चौकी चढ़ि, हारन के बारन ते फंद-बंद छोरै है।
घाँघरे की घूमनि सुऊरून दुबीचे दाबि, आँगी हू उतारि सुकमारि मुख मोरे है।
दंतन अधर दानि दूनरि भई-सी चापि, चौवर-पचौवर कै चूनिर निचोरै है॥

नायिका होली खेल कर आई है, वह अपनी रंग-भरी चुनरी निचोड़ रही है। इसमें निचोड़ते समय के सभी अंगों के कार्य-व्यापार का उल्लेख किया गया है। मुख का मोड़ना, ओठों को दाँतों से दबाना, शरीर का धनुष की भाँति दोहर जाना और उरूओं के बीच वस्त्र को दबाना, वस्त्र को कई परत करके निचोड़ना आदि बहुत साफ है। गणिका का यह रूप-चित्रण देखिये -

आरस सों आरत सँभारत न सीस-पट,
गजन गुजारत गरीबन की धार पर॥
कहै 'पद्माकर' सुगंध सरसावै सुचि,
बिथुरि बिराजैं बार हीरन के हार पर॥
छाजति छबीली छाति छहरि छरा को छोर,
भारे उठि आई केलि-मंदिर के द्वार पर॥
एक पग भीतर सु एक देहरी पै धरे,
एक कर कंज एक कर है किवार पर॥

गणिका का स्वरूप इसमें बहुत साफ दिखाई पड़ता है। प्रात: काल वह द्वार पर एक हाथ रखे दूसरे में कमल का फूल लिए खड़ी है। कवित्त पढ़ने पर ऐसा जान पड़ता है मानो कवि ने कोई चित्र सामने रखकर यह पद्य रचा है। रीतिकाल के कवियों में बिहारी भी एक सधे हुए शब्द चित्रकार दृष्टिगत होते हैं। किंतु बिहारी के यहाँ रूप-सौंदर्य की छटा दिखाने के लिए जगह कम थी। दोहे के छोटे-से दायरे में वे रूप-सौंदर्य का चित्र खींचने का प्रयास तो बराबर करते रहे। इसमें इन्हें सफलता भी मिली, पर विस्तृत क्षेत्र न मिलने के कारण कहीं-कहीं चित्र वैसा नहीं बन पाया है, जैसा पद्माकर के यहाँ है। पद्माकर के यहाँ रूप-सौंदर्य के चित्रण के लिए स्थल संकोच नहीं था। उन्होंने सवैयों व कवित्तों का विस्तृत क्षेत्र लिया। इसलिए उनके चित्र बहुत साफ उतरे हैं। रीतिकाल के एक अन्य प्रमुख कवि घनांनद के यहाँ नारी के रूप का चित्रण करते हुए अंत:करण संवलित रूप-चित्रण पर ही दृष्टि रखी गई है। बिहारी के यहाँ अंत:करण कुछ गौण है, प्राय: बाह्य रूप ही प्रधान हो गया है। पद्माकर के यहाँ या तो अंत:कण और बाह्य रूप में समस्थिति है या शुद्ध बाह्य चित्रण है।

पद्माकर हास-विलासमय जीवन के कवि थे। इसलिए उनकी कविताओं में जीवन के उल्लास और माधुर्य-पक्ष की बड़ी मनोहारी व्यंजना हुई है। इस संदर्भ में यह सवैया देखें -

फागु की भीर अभीरन में गहि गोबिदै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाइ अबीर की झोरी।
छीनि पितम्बर कम्मर तें सुविदा दई मोड़ि कपोलनि रोरी।
नैन नचाइ कहयो मुसकाइ लला फिरि आइयो खेलन होरी॥

यह सवैया अपने रस प्रवाह और भंगिमा वैशिष्ट्य के कारण काफी लोकप्रिय है।

पद्माकर की शृंगार-भावना उच्छृंखल या अनैतिक नहीं है। उन्होंने पति के गर्व का एक अच्छा छंद रचा है। पत्नी को पति नैहर नहीं जाने देता, यद्यपि वहाँ के लोग नायिका के लिए दुःखी हैं -

मो बिन माइ न खाइ कछू, 'पद्माकर' त्यों भई भाभी अचेंत है।
बीरन आये लिबाइवे को तिनकी मृदुबानि हू मानि न लेत है।।
प्रीतम को समुझावति क्यों नहीं, ये सखी तू जु पै राखति हेत है।
और तो मोहि सबै सुख री, दुख री यहै माइके जान न देत है।।

पति-प्रेम की बेजोड़ व्यंजना इस सवैया से होती है। यहाँ वर्ण्य सामग्री साधारण जीवन से ली गई है। अधिकांश रीतिकवि साधारण जीवन में कम घुसे हैं। उनके लिए वर्णन-सामग्री राधा-माधव की प्रेम क्रीड़ा ही विशेष रही है। पद्माकर के यहाँ भी यह स्थिति दिखाई पड़ती है, किंतु इन्होंने अपनी वर्णन-सामग्री सामान्य जीवन से भी चुनी है। यहाँ पद्माकर ने सामान्य जीवन का वर्णन किया है, वहाँ अनोखापन आ गया है। रूप के गर्व की व्यंजना का यह उदाहरण देखिए -

है नहिं माइको मेरी भटू यह सासुरो है सबकी सहिबो करौ।
त्यों 'पद्माकर' पाइ सोहाग सदा सखियान हु को चाहिबो करौ।।
नेह भरी बतियाँ कहिकै नित सौतिन की छतियाँ दहिबो करौ।
चंदमुखी कहें होती दुखी तौ न कोऊ कहैगो सुखी रहिबो करौ।।

17.3.2 वियोग वर्णन

पद्माकर के शृंगार वर्णन की सबसे बड़ी सीमा यह है कि उनके यहाँ संयोग शृंगार का ही विशेष विस्तार है, विप्रलंभ का उतना नहीं। कलिदास **मेघदूत** में कहते हैं वियोग-पक्ष में ही प्रेम का सच्चा स्वरूप प्रकट होता है, वह राशीभूत हो जाता है-

स्नेहानाहु: किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा: प्रेमराशी भवन्ति।

कालिदास की इस मान्यता पर गंभीरता से दृष्टिपात करने का अवकाश पद्माकर को नहीं था। इसलिए उनका वियोग वर्णन कहीं-कहीं ऊहात्मक भी हो गया है। जरा विरह की यह ज्वाला तो देखिये -

घन घमंड पावस-निसा, सरवर लग्यो सुखान।
परखि प्रानपति जानि गो, तज्यौ मानिनी मान।।

किंतु पद्माकर ने जहाँ रीतिकालीन लीक से हटकर वियोग का चित्रण किया है, वहाँ रसात्मकता और नवीनता आ गई है। मुग्धा के विरह का वर्णन देखिये -

माँगि सिख नौ दिन की न्यौते गे गोविंद,
प्रिय सौ दिन समान छिन मान अकुलावै है।
कहै 'पद्माकर' छपाकर छपाकर तें,
बदन-छपाकर मलीन मुरझावै है।।
बूझत जु कोऊ कै कहा री भयौ तोहिं,
तब और ही को और कछू बेदन बतावै है।
आँसू सकै मोचि न सँकोच-बस आलिन में,
उलही बिरह-बेलि दुलही दुरावै है।।
भरति उसासन, दृग भरति, करति गेह के काज।
पल-पल पर पीरी परति, परी लाज के राज।।

लाज के आधिक्य के कारण मुग्धा नायिका हृदय की बात किसी से कह नहीं सकती। घर का काम करते हुए वह एकांत में आहें भरती है। रो भी नहीं पाती, केवल आँखों में आँसू भरकर रह जाती है। अपनी व्यथा को छिपाने में वह प्रयत्नशील तो रहती है, किंतु देह का पीला पड़ना कैसे छिपाए। एकाध उदाहरण और देखिये -

या हौ छिन वाही सों न मोहन मिलौगे जो पै,
लगनि लगाइ एती अगिनि अवाती-सी।
रावरी दुहाई तौ बुझाई ना बुझैगी फेरि,
नेह-भरी नागरी की देह दिया-बाती-सी।।

यहाँ श्लेष का चमत्कार अभिप्रेत है।.किंतु वह भाव तक पहुँचाने में समर्थ है। प्रेमाधिक्य से वियोग के कारण जो विरहाधिक्य की व्यंजना है वह नायक को तत्पर करने में पूर्ण सहायक है।

प्रिय वियोग के कारण सुखद वस्तुएँ भी दुखद हो जाती हैं। पद्माकर ने भो वस्तुओं को दुखद रूप में लाक्षणिक ढंग से रखा है, पर सूधेपन के कारण बात हृदय पर आघात करती है -

ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो भलो
हरि सों हमारे हयाँ न फूले बन-कुंज हैं।
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की,
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं।।

जिसे हम प्यार करते हैं, यदि उसका सान्निध्य हमें प्राप्त न हो तो हम उसके कुशल से ही अपने चित्त का संतोष कर लेते हैं। इस संदर्भ में यह छंद देखिये -

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोविदँ कों
श्रीयुत् सलोने स्याम सुखनि सने रहौ।।
कहै 'पद्माकर' तिहारी छेम छिन-छिन
चाहियतु, प्यारे मन-मुदित घने रहौं।।
बिनती इती है कै हमेस हू मुहै तौ निज,
पाइन की पूरी परिचारिका गने रहौ।।
याही में मगन मनमोहन हमारो मन,
लगनि लाइ लाल मगव बने रहौ।।

प्रिय से वियोग होने पर घर सूना हो जाता है, एक उदास परिवर्तन दिखाई पड़ता है। और, इस उदास परिवर्तन का कारण न ढूँढ सकने में एक प्रकार की तीव्र वेदना छिपी रहती है -

सुभ सीतल मंद सुगंध समीर कछू छल-छंद से ह्वै गये हैं।
'पद्माकर' चाँदनी चंद हू के कछू औरहि डौरन च्वै गये हैं।
मनमोहन सों बिछुरे इत ही बनि कै न अबै दिन ह्वै गये हैं।
सखि वे हम वे तुम बेई बने पै कछू के कछू मन ह्वै गये हैं।।

17.4 प्राकृतिक वर्णन

शृंगार के प्रकरण में उद्दीपन के रूप में पद्माकर ने षड्ऋतु वर्णन भी किया है। यहाँ प्रकृति साध्य नहीं, साधन बनकर आयी है। पद्माकर वस्तुत: मानव-सौंदर्य के चितेरें कलाकार थे, प्रकृति की सम्मोहकता पर रीझने वाले सहृदय नहीं। अत: उनका प्रकृति चित्रण अधिकतर वर्णनात्मक है, उसमें संश्लिष्ट दृश्य योजना का अभाव है। एक उदाहरण देखें -

कूलन में केलि में कहारन में कुंजन में क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत हैं।
कहैं 'पद्माकर' परागन में पौन हू में पानन में पिक में पलासन पगंत हैं।
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत हैं।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगरो बसंत हैं।।

यह कवित्त विशुद्ध नामपरिगणात्मक है। इससे यह तो मालूम होता है कि सर्वत्र वसंत छाया हुआ है, पर यह वसंत का कोई संश्लिष्ट चित्र नहीं उपस्थित करता। इसके विपरीत, निराला का वसंत-गीत 'सखि वसंत आया' - वसंत का एक संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करता है। इसमें 'नव वय लतिका', 'मधुप-वृन्द', 'पिक स्वर' या सरसी', 'सरसिज', 'केशर के केश', 'पृथ्वी के स्वर्ण शस्यांचल' आदि जिन उपादानों की चर्चा की गई है, वे ऊपर से भिन्न होते हुए भी अंत:सूत्रित हैं और उनके माध्यम से

वसंत की एक पूरी तस्वीर सामने आ जाती है। पर पद्माकर द्वारा वर्णित दृश्यों में ऐसा न तो कोई आंतरिक संबंध है, न तरतीब। यहाँ पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल का स्मरण अनुचित न होगा कि काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है।

सारत: मानव-व्यापारों के चित्रण में पद्माकर की वृत्ति रमी है, किंतु प्रकृति-चित्रण मे इन्होंने एकदम मनोयोग नहीं दिया है। ऋतुओं के वर्णन में इन्होंने खेलवाड़-सा किया है। भाषा, भाव और बाह्य स्वरूप तीनों दृष्टियों से उसमें कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती।

17.5 लोक जीवन का चित्रण

जैसा कि सर्वविदित है कि रीतिकाव्य में लोक जीवन के विभिन्न पक्ष सर्वथा उपेक्षित हैं। आश्रयजीवी कवियों के यहाँ यह स्वाभाविक ही था। पद्माकर भी इसके अपवाद नहीं हैं। फिर भी पद्माकर में लोक जीवन का सीमित अर्थों में चित्रण देखा जा सकता है। शृंगार वर्णन के संदर्भ में हम इसे रेखांकित कर चुके हैं। पद्माकर के प्रशस्ति काव्य और भक्ति और भक्ति काव्य में भी लोक जीवन की अनुगूँज सुनी जा सकती है। पद्माकर के प्रसिद्ध प्रशस्ति-काव्य **'हिम्मतबहादुर विरूदावली'** में नोने अर्जुन सिंह और हिम्मतबहादुर के बीच हुए युद्ध का फड़कती भाषा मे वर्णन है। इसमें वर्णनात्मक स्थलों की प्रधानता है। प्रबंध काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का भले कोई महत्व न हो, फिर भी इसमें तत्कालीन समाज की एक धुंधली-सी तस्वीर जरूर दिखाई पड़ती है।

अपने जीवन के संध्याकाल में पद्माकर का भी कुछ अन्य शृंगारिक कवियों की भाँति वैराग्य और भक्ति की ओर झुकाव हुआ। संभवत: इसका कारण स्वाभिमान को ठेस लगना और शारीरिक व्याधि थी। यह शृंगार के अतिरेक की प्रतिक्रिया भी हो सकती है। यद्यपि इस कोटि की रचनाओं में अनुभूति की सच्चाई पर सहसा अविश्वास नहीं किया जा सकता। पद्माकर की भक्ति-विषयक कविता में भी संसार की जटिलताओं का ही चित्रण हुआ है। कहीं पेट की बेगार का निरूपण है, तो कहीं तृष्णा और वैर का वर्णन। उनकी भक्तिपरक रचनाओं में संसार की असारता के साथ ही संसार की भावनाएँ भी भीतर बैठी हुई हैं -

धोखा की धुजा है औ रूजा है महादोषन की,
मल की मँजूषी मोह-माया की निसानी है।
कहै 'पद्माकर' सु पानी-भरी खाल, ताके
खातिर खराब कत होत अभिमानी है।
राखे रघुराज के रहै तो रहै पानी,
न तौ जंगी जमराज ही के हाथनि बिकानी है।
जा ही लगि पानी तौ लौं देह सी दिखानी,
फेरि पानी गये खारिज परवाल ज्यों पुरानी है।।

इसमें 'पानी रहने' की भावना संसारी ही है।

पद्माकर की भक्ति भावना के केंद्र में कोई एक देवता नहीं है। लोक में जिन-जिन देवों की वंदना अथवा पूजा होती थी, उनके प्रति समभाव से वंदना की गई है। उनकी भक्ति-भावना असाम्प्रदायिक है। वे लौकिक दृष्टि से ही चलते थे। पद्माकर के भक्ति वैराग्यपरक ग्रंथ **'ईश्वर पचीसी'**, **'प्रबोध पचासा'**, **'गंगालहरी'** और **'रामरसायन'** में भक्ति भावनाएँ व्यक्त हुई हैं, किंतु इस क्रम में तत्कालीन लोक-जीवन के कष्ट भी चित्रित हुए हैं।

17.6 काव्य शिल्प

अब पद्माकर के काव्य शिल्प पर विचार करें। उन्होंने प्रबंधकाव्य और मुक्तक दोनों तरह की रचनाएँ की हैं। प्रबंध-काव्य के अंतर्गत **'हिम्मतबहादुर विरूदावली'** और **'प्रताप सिंह विरूदावली'** उल्लेखनीय हैं। किंतु प्रबंध-काव्य की दृष्टि से इनका कोई महत्व नहीं है, क्योंकि न तो इसमें संबंध सूत्र का उचित निर्वाह है, और न रसमय स्थलों की अच्छी पकड़ ही। पद्माकर प्रबंधकार कवि थे भी

नहीं। उनका यश तो मुक्तक रचनाओं पर ही अवलम्बित है। पद्माकर की शृंगारिक रचनाएँ मुक्तक शैली में हैं और ये रचनाएँ ही हमारे विवेचन का मुख्य विषय हैं। उन्होंने कवित्त, सवैये और दोहे रचे हैं। संस्कृत के **'अमरूक शतक'** के अनुकरण पर पद्माकर ने रसात्मकता उत्पन्न करने के लिए कुछ छंद संवाद शैली में रचे हैं। ऐसे छंद अपेक्षाकृत स्वाभाविकता लिए हुए हैं -

बोलत न काहे ए री? पूछे बिन बोलौं कहा,
पूछति हौं कहा भई स्वेद-अधिकाई है?
कहै 'पद्माकर' सु मारग के गये-आये,
साँची कहु मो सों आज कहाँ गई-आई हैं?
गई-आई हौं तो पास साँवरे के, कौन काज?
तेरे लिये लयावन सु तेरियै दुहाई है।
काहे तें न ल्याई फिरि मोहन बिहारी जू कों?
कैसे वाहि ल्याऊँ? , जैसे वाको मन ल्याई है।

'मोहन बिहारी जू' में बड़ी सार्थक व्यंजना है। इन संवादों के अंतिम उत्तर में ही वास्तविक भाव प्रकट होने दिया गया है।

काव्य-शिल्प के संदर्भ मे पद्माकर की अलंकार-योजना भी विचारणीय है। उनकी अलंकार-योजना वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने और भाव की अनुभूति तीव्र कराने में सहायक है। उन्होंने प्रायः साम्यमूलक अलंकारों - उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का ही उपयोग किया है -

विंदु घने मेहँदी के लसैं कर, ता पर यों रहयो आनन आई कै।
इंदु मनो अरविंद पै राजत इंद्रवधून के वृंद बिछाइ कै।।

सारूप्य और साधर्म्य दोनो विचार से यहाँ उत्प्रेक्षित उपमान ठीक पड़ते हैं।

पद्माकर ने भीषण उत्प्रेक्षाएँ नहीं की हैं। बेंदा के छटककर गिरने पर कवि की उत्प्रेक्षा देखें -

नीलमनि-जटिल सुबेंदा उच्च कुच पै, परयो है
टूटि ललित ललाट के मजेजे तें।
मानो गिन्यो हेमगिरि सृंग पै सुकेलि करि
कढ़ि कै कलंक कलनिधि के करजें तें।।

श्लेष और उपमा के सहारे विरह की व्यंजना में कहा गया है -

याही छिन वाही सों न मोहन मिलौगे जो पै,
लगनि लागइ एती अगिनि आबती-सी।
रावरी दुहाई तौ बुझाई न बुझैगी फेरि,
नेह-भरी नागरी की देह दिया बाती-सी।।

भावानुभूति तीव्र कराने वाले अलंकारों के अतिरिक्त पद्माकर ने शुद्ध चमत्कार उत्पन्न करने वाले अलंकार भी रचे हैं। पद्माकर की अलंकार-योजना के संदर्भ में **'पद्माभरण'** उल्लेखनीय है। यह है भी अलंकार ग्रंथ, जो महाराज जसवंत सिंह के **'भाषाभूषण'** की शैली में लिखा गया है। इसमें प्रायः एक ही दोहे में अलंकार के लक्षण और उदाहरण दोनों दिए गए हैं। पूर्वार्द्ध में लक्षण, उत्तरार्द्ध में उदाहरण। जैसे -

1. **प्रतीप - सो प्रतीप उपमान को जहँ कीजै उपमेय।**
मुख सो सोभित सरद-ससि-कमल सुलोचन सेय।।

2. **मीलित - सो मीलित सादृस्त तें भेद न जान्यो जाइ।**
अरून अधर में पीक की लीक न परति लखाई।।

ऐसी तमाम पुस्तकों का आधार ग्रंथ जयदेव का **'चन्द्रालोक'** है। लेकिन पद्माकर के **'पद्माभरण'** पर बैरीसाल के **'भाषाभरण'** का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। यद्यपि इस ग्रंथ में केवल शृंगारिक उदाहरण देने का दुराग्रह नहीं दिखाया गया है। फिर भी 'पद्माकर' की शृंगार चेतना की बानगी इसमें देखी ही जा सकती है।

17.7 काव्य भाषा

आइए, अब पद्माकर की काव्य भाषा पर विचार करें। उनकी काव्यभाषा ब्रजभाषा है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण उनकी सहज और प्रवाहपूर्ण भाषा शैली ही है। पद्माकर का भाव-क्षेत्र विस्तृत है और उनकी भाषा भावों की अनुवर्त्तिनी है। वे बुंदेलखंड के रहने वाले थे। इसलिए उनकी प्रारंभिक रचनाओं की भाषा पर बुंदेली का प्रभाव है। पद्माकर की भाषा का सबसे स्पष्ट गुण है उसका माधुर्य और प्रसाद। माधुर्य की सृष्टि के लिए पद्माकर प्राय: अनुप्रास का सहारा लेते हैं। अनुप्रास के प्रति उनमें अत्यधिक मोह दिखाई पड़ता है। वीर रस के प्रसंग में उन्होंने ओजमयता का भी अच्छा निर्वाह किया है।

कहते हैं, मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा के पंख खुल जाते हैं। इस क्षेत्र में भी पद्माकर अपने समसामयिक कवियों से पीछे नहीं है। **'भूलि हू चूक परै जो कहूँ तिहि चूक ही हूक न जाति हिये तें'** जैसे उदाहरण उनकी प्रत्येक रचना में अनायास मिल जायेंगे। पद्माकर की भाषा-सिद्धि का एक बड़ा प्रमाण यह भी है कि परवर्ती अनेक कवियों ने उनके अनुकरण का प्रयास किया, मगर वह सफलता कदाचित् ही दुहराई जा सकी।

सतही तौर पर पद्माकर के कवित्व का ग्राफ अन्य रीति कवियों की तरह ही दिखाई पड़ता है। उन्होंने शृंगार वर्णन उसी संकुचित क्षेत्र के भीतर किया है जिसमें उनके पूर्ववर्ती अपनी शृंगार-वाटिका लगाते आ रहे थे। किंतु परिपाटी से अलग उन्होंने भावों की सीधी अभिव्यक्ति में अपनी जैसी भावुकता दिखाई है वैसी अन्यत्र नहीं।

17.8 सारांश

पद्माकर की महत्ता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि परवर्ती कवियों में ग्वाल, द्विजदेव, लछिराम पद्माकर के भावों की नक़ल करने बैठ गए। ग्वाल की 'यमुनालहरी' पद्माकर की 'गंगालहरी' की होड़ाहोड़ी में बनी और 'रस रंग' 'जगद्विनोद' के अनुगमन पर निर्मित हुआ। इन कवियों में विषय की ही समानांतरता नहीं है, उपविषय, प्रसंग, भाव आदि ठीक आमने-सामने भिड़े बैठे हैं। लछिराम ने भी 'गंगालहरी' की होड़ में 'सरयूलहरी' लिखी है। लछिराम में ग्वाल-सा अनुकरण तो नहीं है, पर पद्माकर के विषयों से बाहर लछिराम भी नहीं जा सके हैं। द्विजदेव की भी कुछ कविताएँ पद्माकर की जोड़-तोड़ में ही निर्मित हुई हैं। पं.विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि पुराने ढंग का कोई परवर्ती कवि ऐसा न होगा जिसने पद्माकर की कविता को पढ़ा या सुना न हो। पढ़ना और सुनना ही नहीं, उसका अनुगमन भी बहुतों ने किया है। शायद ही कोई परवर्ती कवि ऐसा हो जो पद्माकर के भावों की न सही, भाषा की सफाई की नकल करने न बैठा हो। भाषा के विचार से पद्माकर का हिंदी के पिछले खेवे के कवियों पर बहुत बड़ा प्रभाव है।

पद्माकर की सबसे बड़ी सीमा यह है कि उन्होंने काव्य को केवल राजाओं के रिझाने की ही वस्तु समझा, उसके प्रकृत आलंबन का ध्यान न रखा। जिन राजाओं की प्रशंसा में उन्होंने अपनी कवि-प्रतिभा को मुक्त-हस्त लुटाया, उनके द्वारा उन्हें विषाद ही मिला। इनके इस छंद से यही लक्षित होता है -

है थिर मंदिर में न रह्यो गिरि-कंदर में न तब्यो तप जाई।
राज सिझाने न कै कविता रघुराज-कथा न यथामति गाई॥
यों पछितात कछू 'पद्माकर' का सों कहौ निज मूरखताई।
स्वारथ हू न कियो परमारथ यों ही अकारथ बैस बिताई॥

पद्माकर का यह पश्चाताप उनकी आत्मालोचना तो है ही, उनके काव्य की भी समालोचना है। इसके बावजूद कहना ही होगा कि पद्माकर रीतिकाल के उल्लेखनीय कवि हैं और वे अपना प्रभाव हिंदी कविता पर छोड़ गए हैं।

17.9 अभ्यास/प्रश्न

1. पद्माकर के शृंगार वर्णन की विशेषताओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. पद्माकर के काव्य शिल्प और भाषा पर प्रकाश डालिए।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

बिहारी, संपादक पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
बिहारी का नया मूल्यांकन, डॉ. बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
घनानंद, डॉ. लल्लन राय, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली।
पद्माकर ग्रंथावली, संपादक पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।